

मध्यकालीन भारतीय नाटकों पर आधारित शिक्षा व्यवस्था

सुरेन्द्र सिंह
शोधार्थी, इतिहास विभाग,
मदवि, रोहतक

सारांश

प्राचीन काल से ही शिक्षा को, व्यक्ति को सुसंस्कृत बनाने के लिए एवम् उसके चहुमुखी विकास के लिए आवश्यक माना गया है। सामाजिक प्रगति के लिए शिक्षा दृढ़ आधारशिला का कार्य करती है। समाज के निर्माण में यह आवश्यक है कि इसक सभी सदस्य शिक्षा के प्रति जागरूक हों। सामान्यतः ग्यावहवीं और बारहवीं शताब्दियों के आरम्भ से भारत में मुस्लिम शिक्षा मुख्यतः तीन संस्थाओं से दी जाने लगी थी। उसमें प्रथम तो मकतबे और निजी घरों में चलने वाले विद्यालय। द्वितीय मस्जिदें और खानकाहें और तृतीय मदरसे यामहा विद्यालय थे। ये तीनों मोटे तौर पर क्रमशः प्राथमिक, माध्यमिक और उच्चतर शिक्षा के चरणों का प्रतिनिधित्व करते थे। उन दिनों हिन्दू शिक्षा मुख्यतः गुरुजनों, पाठशालाओं या प्रारम्भिक विद्यालयों और टोलों या महाविद्यालयों में दी जाती थी। अलावे विद्वान् मध्येताओं के बीच शास्त्रार्थ यानि शैक्षक वाद-विवाद समय-समय पर होते थे, जिनमें अन्य लोग भी हिस्सा लेते थे। इनसे लोगों में शिक्षा और शालीनता के उद्देश्य की प्राप्ति में मदद मिलती थी। सामान्यतः शिक्षा के दो ही स्तर थे – प्राथमिक और उच्चस्तरीय। अध्यापन के पेशे पर व्यवहारतः ब्राह्मणों का एकाधिकार था। इस प्रकार इस शोध पत्र में नाटकों के माध्यम से शिक्षा व्यवस्था के विषय पर शोध किया जाएगा।

मुख्य शब्द : नाटक, शिक्षा व्यवस्था, गुरुजन, मुस्लिम, संस्था

प्रस्तावना

मानव का विकास शिक्षा के द्वारा ही हो सकता है। शिक्षा द्वारा ही देश जाति, व्यक्ति और समाज की उन्नति सम्भव है। भारत देश में गुरु को प्राप्त कर ही मानव सच्चा विद्वान बन सकता है प्राचीन काल में भारत में तक्षशिला, नालन्दा, वाराणसी शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे। परन्तु आलोच्य समय तक पहुंचते-पहुंचते विदेशी आक्रमणकारियों, इरानियों, कृषणों एवं हुणों ने पांचवी शताब्दी में नष्ट कर दिया। नालन्दा को तुर्क कुतुबुद्दीन ऐबक के सेनानायक मलिक बख्तियारुद्दीन खिलजी ने 13वीं शताब्दी में अनेक मन्दिरों को नष्ट करके उनके स्थान पर मस्जिदों का निर्माण कराया। बिहार में उसके प्रथम आक्रमण का कारण उन विद्यालयों को नष्ट करना था, जिनके द्वारा बौद्ध साधुओं की वृद्धि हो रही थी। बख्तियार ने एक व्यक्ति को भी जीवित नहीं छोड़ा।¹ परन्तु भारतीयों तथा विदेशियों ने फिर से इन शिक्षण संस्थाओं का निर्माण किया। जिन स्मारकों को नष्ट किया गया था। उनको एक बालदित्या नामक

महायान शाखा के बुद्धिस्ट ने उनका पुनः निर्माण कराया जो कौशाम्बी के शासक महीपाल के पास 11 वर्षों तक रहा।²

इस प्रकार विदेशी आक्रमणकारियों ने शिक्षा को हानि पहुंचाने का पूर्ण प्रयत्न किया, परन्तु इतनी उथल-पुथल के होते हुए भी भारत में छात्र शिक्षा निरन्तर रूप में प्राप्त करते थे। विद्वानों ने अपनी साहित्यिक गतिविधियों को कम नहीं होने दिया। अपनी रचनाओं से वे साहित्य भण्डार में अपना योगदान देते रहे। साहित्य रचनाओं के विकास के लिए हमारा आलोच्य नाट्य साहित्य एक ठोस उदाहरण है। इसके अतिरिक्त जयदेव द्वारा रचा गया 'गीत-गोविन्द' अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रंथ है। जो कि 12वीं शताब्दी में रचा गया था।

अल्बेरूनी बताता है कि इस समय वाराणसी और कुटनीमातम शिक्षा के बड़े केन्द्र थे तथ कथासरितसागर पाटलीपुत्र को शिक्षा का केन्द्र बताता है। 12वीं शताब्दी के अन्त में मिथला भी शिक्षा के रूप में उभरा।³ तभी मैथली भाषा में मध्यकाल में साहित्य लिखा गया। एक विद्यार्थी को सदाचारी रहने की शिक्षा दी जाती थी और उसे वेदों, पुराणों आदि का ज्ञान कराया जाता था। आलोच्य नाट्य साहित्य के अनुसार तत्कालीन शिक्षा के विषय, व्याकरण, नीति, श्रुतियां, तर्क, स्मृतियां, पुराण, ज्योतिष, उपनिषद् आदि थे।⁴ नालन्दा विश्वविद्यालय में औषधि-विज्ञान की शिक्षा भी दी जाती थी।

धनुषविद्या, नाट्यशास्त्र विद्या तथा संगीत शिक्षा भी दी जाती थी।⁵ शिक्षा देने का अधिकार ब्राह्मण का था।⁶ उथल-पुथल के इस युग में लोकाभिरुची तथा जनविश्वास होने से तंत्र-मंत्र ने भी अपना अधिकार जमा लिया था, यही कारण है कि शिक्षा के क्षेत्र में माया, इंद्रजाल, तंत्र-मंत्र आदि अनेक विद्याओं का जन्म हुआ। बौद्धों की बज्रयान शाखा के प्रभाव से तंत्र-मंत्र का बोलबाला अधिक बढ़ गया था। यही कारण था कि वैद्य लोग भी अपनी वैद्यकृति को छोड़कर तंत्र-मंत्र विद्या का भी अभ्यास करने लगे थे। यह उस समय की मनोदशा का चित्रण करता है। तंत्र-मंत्र विद्या से बच्चों को टोटका करते थे। सम्भवतः इसमें भी बच्चों की प्राणरक्षा के बजाय मारने की बात सिद्ध होती थी। लटकमेलक में जन्तु केतु वैध भी अपवाद से खाली नहीं है।⁷

तत्कालीन समाज में गुरु का सत्कार था। यहां तक कि जब गुरु पढ़ाने में लीन होते थे, तो उस समय उसमें कोई बाधा नहीं डालता था। यदि गुरु से कार्य भी होता अध्ययन समाप्ति के बाद ही उस कार्य के विषय में बात की जाती थी। गुरु और शिष्य के बीच घनिष्ट सम्बन्ध रहता था। जो उस युग की शिक्षा व्यवस्था का मुख्य स्वरूप समझा जाना चाहिए। गुरु और उसके शिष्य के बीच सामान्यता वैसा ही स्नेहपूर्ण सम्बन्ध रहता था जैसा कि पिता और पुत्र के बीच। शिक्षक विद्यार्थी के प्रति स्नेहपूर्ण निःस्वार्थी, त्यागी और निष्ठावान थे। वे पेशेवर और व्यापार बुद्ध वाले न थे। अपने ज्ञान को क्षितिज को विसतुत करने के लिए वे अपने गुरुओं की पद्धति आत्मसात् करते थे।⁸ छात्र गुरु का नाम नहीं लिया करते थे।⁹

जोकि आदर का सूचक है। गुरु ने भी यदि किसी छात्र को अस्त्रादि देना होता था तो पूर्व ही प्राप्त करता छात्र की परीक्षा ली जाती थी। उत्तीर्ण होने पर ही छात्र अस्त्र का अधिकारी होता था।¹⁰ शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् छात्र अपनी श्रद्धा के प्रतीक के रूप में अपनी आर्थिक स्थिति के अनुरूप गुरु दक्षिणा भी देते थे। जैसे कि किरातार्जुनीव्ययायोगः के इस श्लोक से प्रकट होता है।

देव देव त्रिजगद गुरु! किन्ते गुरुदक्षिणां ददामि।¹¹

इस समय के नाटकों में शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत चिकित्सा शिक्षा का भी उल्लेख किया गया है। मानव जीवन में चिकित्सा का विशेष स्थान है। सुन्दरता और निरोगता की प्राप्ति में चिकित्सा का महत्वपूर्ण योग है।

समाज के प्राणियों के स्वस्थ और दीर्घायु होने में देश के बड़े-बड़े वैधराजों का महान् योगदान रहा है। गुप्त युग में 'धनवंतरि' जैसे चिकित्सक हुए, जिन्होंने अनेक वैधक ग्रंथों की रचना की। इसके अतिरिक्त चरक, वाग्भट्ट, माधवनिदान आदि ग्रंथों के निर्माताओं से लाखों प्राणियों को जीवनदान मिला। सन् 1200 ई. के लगभग शार्ङ्गधर ने सांगधर संहिता लिखी।¹² इन ग्रंथों में चिकित्सा शास्त्र शरीर विज्ञान, औषध विज्ञान की पूर्व रूप में व्याख्या की गई है।

आलोच्य समय में सुयोग्य वैधराज थे, जिनको अपनी विधा पर गर्व था। वह दृढ़ विश्वास के साथ रोग को दूर करने की बात किया करते थे तथा वैधराज की उपाधि को धारण करते थे। इन वैध राजाओं से लाखों प्राणियों को जीवनदान मिलता था। ये वैध अपने पास औषधि की पेटी भी रखते थे। जिसमें विभिन्न प्रकार की औषधियां हुआ करती थीं, परन्तु नीम हकीम खतरे जान वाली उक्ति को चरितार्थ करने वाले वैध भी थे। जो भोली-भाली जनता को ठगते थे और आज की भांति जिस प्रकार डॉक्टर जब तक मरीज से पूरा पैसा नहीं वसूलता तब तक उयका पीछा नहीं छोड़ता, उसी प्रकार जब तक मरे प्राणी के मुख से आग न लगा तब तक वैध मृतक को पैसे के लोभ में घेरे रहता था।¹³ वे चरक, सुश्रुत, माधव, निदान आदि जैसे महान् ग्रंथों के नाम पर अपने अधकचे ज्ञान से जनता को धोखे में डालते थे। लटकमेलक प्रहसन में वैधराज जन्तुकेतु इसके उदाहरण हैं। जन्तुकेतु को चरक संहिता का नुस्खा मिला था। वह कहता है कि जिस किस वृक्ष की जड़ को जिस किसी के साथ पीस डाले और जिस किसी को दे दे जैसा तैसा फल होगा ही। यद्यपि ऐसे लोक विख्यात सिद्धान्त ग्रन्थ में भला ऐसी उटपटांग बातों के लिए स्थान कहां? पर यह वैधराज अपनी करनी कथनी को इस महान् ग्रन्थ पर मढ़ देने में गौरव समझाता था। जन्त्र-मंत्रों ने भी चिकित्सा विधि में प्रवेश ले लिया था। वैध भी इसकी शिक्षा प्राप्त कर उपचार में प्रयोग करते थे। इस क्रिया से छोटे-छोटे बच्चों को टोटका करते थे। सम्भवतः इसमें भी बच्चों की प्राणरक्षा के बजाय मारने की ही बात सिद्ध होती है। जन्तुकेतु वैध भी इस अपवाद से खाली नहीं हैं।¹⁴

इसके अतिरिक्त घरेलू उपचार भी प्रचलित थे। मूर्च्छित होने पर चन्दन के छींटे मार दिये जाते थे।¹⁵ घाव होने पर किसी द्रव्य युक्त औषध का प्रयोग किया जाता था।¹⁶

निष्कर्ष

इस प्रकार प्रस्तुत शोध-पत्र में मध्यकालीन नाटकों पर आधारित शिक्षा व्यवस्था पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। इस युग में राजनीति के बावजूद भी नाट्य साहित्य की रचना विपरीत उस समय की शिक्षा पद्धति को ही दर्शाता है। इस समय शिक्षा आज की भांति व्यवसाय न होकर निःस्वार्थ भाव से दी जाती थी। हालांकि शिक्षा पर सभी वर्गों का अधिकार नहीं था। शिक्षा केवल उच्च वर्ग तक ही सीमित थी। फिर भी समाज में शिक्षा के महत्व को नकारा नहीं जा सकता था। उस समय शिक्षा आदर्श भाव को दर्शाती है तथा गुरु और शिष्य के मधुर सम्बन्ध को भी प्रस्तुत करती है। शिष्य अपने शिक्षक के प्रति श्रद्धाभाव रखते थे। लेकिन कुछ तथ्यों से स्पष्ट होता है कि शिक्षा के क्षेत्र में विकरतियां आने लगे थीं। इसमें जादूटोना का समावेश हो गया था। इस प्रकार इस शोध पत्र में नाटकों के आधार पर शिक्षा के ऊपर विशेष प्रकाश डाला गया है।

संदर्भ सूची

- ¹ बी.पी. मजूमदार, सोसियो इक्नॉमिक हिस्ट्री ऑफ नोर्थ इण्डिया, कलकत्ता, 1960, पृ. 156
- ² वही, पृ. 164
- ³ वही, पृ. 159
- ⁴ जयदेव कृत *प्रसन्न राघव*, सं. रमाकान्ता त्रिपाठी, चौखम्भा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1977, पृ. 59, 60
- ⁵ वत्सराज कृत *किरार्तार्जुनीय व्यायोग*, सं. रविन्द्रनाथ त्रिपाठी, चौखम्भा, ओरियन्टालिया, वाराणसी, 1977, पृ. 11; हस्तिमल कृत *विक्रांत कौरव*, सं. पन्ना लाल जैन, चौखम्भा संस्कृत सीरिज आफिस, वाराणसी, 1969, पृ. 2, 89
- ⁶ शंखधर कृत *लटकमेलक*, हिन्दी व्याख्या, कपिल देव गिरी, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी, 1962, पृ. 47
- ⁷ लटकमेलक, भूमिका, पृ. 9
- ⁸ फणीन्द्र नाथ ओझा, *मध्यकालीन भारतीय समाज एवं संस्कृति*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1988, पृ. 156
- ⁹ लटकमेलक, पृ. 10
- ¹⁰ किरार्तार्जुनीय व्यायोग, पृ. 80
- ¹¹ वही, पृ. 82
- ¹² परामात्मा शरण, *मध्यकालीन भारत*, नन्द किशोर एण्ड बदर्स, बनारस, 1950, पृ. 48
- ¹³ लटकमेलक, पृ. 18
- ¹⁴ लटकमेलक, पृ. 18, 20
- ¹⁵ रामभद्र मुनि कृत *प्रबुद्धरोहिणेय*, सं. राधावल्लभ, निर्णय सागर, विश्वविद्यालय, सागर,
- ¹⁶ रामचन्द्र कृत *सत्यहरिश्चन्द्र*, सं. भास्कर रामचन्द्र, शंकर विष्णु निर्णय सागर प्रैस, बम्बई, 1909